**ओ३म्**

**‘गंगा की महिमा और महर्षि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द महाभारत काल के बाद भारत ही नहीं विश्व में उत्पन्न हुए वेदों के अपूर्व विद्वान थे। उन्होंने अपनी कठोरतम तपस्या व साधना व ब्रह्मचर्य से यह जाना था कि वेद सृष्टि की आदि में ईश्वर के द्वारा चार ऋषियों को दिया गया वह ज्ञान है जो मनुष्य के जीवन भर के कर्तव्यकर्मों-धर्मकार्यों आदि को सूचित करता है। इसके साथ वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं, इसका साक्षात ज्ञान भी उन्हें योग समाधि व वेदाध्ययन से हुआ था। वेदों की इसी महत्ता के कारण ही उन्होंने वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सभी आर्य हिन्दुओं का परमधर्म घोषित किया था। सृष्टि की आदि में उत्पन्न भगवान मनु ने भी घोषणा की थी कि वेद धर्म का मूल है और धार्मिक विषयों में वेद ही परम प्रमाण हैं। वेद विषयक इन मान्यताओं के समर्थन में महर्षि दयानन्द जी ने देश भर का भ्रमण करके प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार शंका करने, वार्तालाप करने व शास्त्रार्थ करने का अवसर दिया। उन्होंने सन् 1863 से 1883 तक के अपने सक्रिय कार्यकाल में देश भर में घूम घूम कर वैदिक मान्यताओं का प्रचार किया। न केवल उपदेश व वार्तालाप के द्वारा ही, अपितु सत्यार्थ प्रकाश व वेदों का संस्कृत व आर्यभाषा हिन्दी में भाष्य कर भी उन्होंने अपने कथन को पुष्ट व सत्य सिद्ध किया।

**मनमोहन कुमार आर्य**

 26 अगस्त, सन् 1878 को महर्षि दयानन्द मेरठ में वेदों का प्रचार करने के लिए आये थे और 3 अक्तूबर, 1878 तक यहां रहकर प्रचार किया। इसी बीच 14 सितम्बर से 22 सितम्बर तक बाबू छेदीलाल जी की कोठी पर उन्होंने अपने व्याख्यानों की श्रृंखला आरम्भ की। यहां पर महर्षि दयानन्द जी ने कुछ पोप लीला तथा पाखण्डियों के व्यवहार, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, अकाल तथा महामारी आदि के कारणों के सम्बन्ध में वेदानुसार प्रकाश डालते हुए मनोहर उपदेश दिया। आर्य लोगों के सत्कर्मों, आर्यसमाज के नियमों तथा कुछ अन्य विषयों पर भी विचार रखे गये। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का अर्थ सहित सस्वर पाठ बहुत सुन्दर रीति से किया गया। यहां मेरठ की **‘धर्म रक्षिणी सभा’** की ओर से तीन पत्रों में तीन भाषाओं संस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू में उनसे प्रश्न किये गये थे। अन्य अनेक लोगों ने भी प्रश्न प्रस्तुत किये जिनका उत्तर महर्षि दयानन्द के द्वारा 2 अक्तूबर, 1878 को सभा में दिया जिसमें सैकड़ों की संख्या में श्रोता तथा प्रश्नकर्ता भी उपस्थित थे। धर्मसभा मेरठ के तीन प्रश्नों में से दूसरा प्रश्न गंगा जी की अन्य नदियों से श्रेष्ठता पर था। प्रश्न था कि **‘गंगा जी सब नदियों से श्रेष्ठ और पूजनीय हैं। इसमें भी प्रमाण दीजिए और जो कुछ सन्देह हो तो प्रकाशित करें?’** इस लेख में हम महर्षि दयानन्द जी द्वारा दिया गया इस दूसरे प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत कर रहें हैं।

अपने उत्तर में महर्षि दयानन्द जी ने कहा कि आप पूछते हैं कि गंगाजी के सब नदियों में पूजनीय तथा श्रेष्ठ होने में क्या प्रमाण है? इससे प्रतीत हुआ कि या तो आपके विचार में गंगा जी श्रेष्ठ तथा पूजनीया नहीं है और यदि श्रेष्ठ तथा पूजनीया भी हैं तो आप उसका प्रमाण नहीं दे सकते हैं अन्यथा इस विषय में मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यह है कि मुझे गंगा जी के श्रेष्ठ होने तथा उसके मुक्तिदायक एवं पापनाशक न होने में किंचित भी सन्देह नहीं है। यदि गंगा-स्नान से ही मुक्ति मिल सकती और पाप छूट सकते हैं तो फिर सकल धर्म, शुभ-कर्म, परमेश्वर की आज्ञा का पालन--उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना करना निरर्थक है। कारण यह कि जब एक वस्तु बड़ी सुगमता से मिल सकती है तो फिर कठिन मार्ग पर क्यों चला जाए? वेदादि सत्यशास्त्रों में कहीं भी गंगा जी के स्नान को मुक्तिदायक होना नहीं लिखा है। वेद आदि सत्य शास्त्रों से वेद के स्वाध्याय, धर्म के अनुष्ठान, सत्य के ग्रहण तथा असत्य के त्याग का नाम तीर्थ लिखा है। क्योंकि इन्हीं साधनों से मनुष्य दुःख सागर से तर कर मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। मनुस्मृति के अध्याय 5, श्लोक संख्या 109 में स्पष्ट लिखा है--

**आद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।**

**विद्यातपोभयां भूतात्मा बुद्धिज्र्ञानेन शुद्धयति।।**

अर्थात् जल से शरीर, सत्य से मन, विद्या तथा तप से आत्मा एवं ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। महर्षि दयानन्द के इस मनुस्मृति के प्रमाण पर टिप्पणी करते हुए आर्यजगत के शीर्ष विद्वान प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु कहते हैं कि मनु महाराज के इतने ज्ञानवर्द्धक तथा स्पष्ट आदेश व उपदेश को जानते हुए हिन्दू भेड़चाल चलते हैं। कोई धर्माचार्य सत्योपदेश देने का साहस नहीं करता। इसी भेड़चाल के कारण सैकड़ों लोग प्रतिवर्ष तीर्थ स्नान करते हुए डूबकर मर जाते हैं। जून 2013 में उत्तराखण्ड में सहस्रों मरे हैं। अपने उत्तर में महर्षि दयानन्द जी ने यह भी बताया है कि छान्दोग्यपनिषद् में आता है—**‘अहिंसन्सर्व भूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः।‘** अर्थात् मन से वैरभाव का त्यागकर किसी प्राणी को दुःख न देना ही तीर्थ है अन्य तीर्थ नहीं है। हिन्दूओं के मान्यग्रन्थ छान्दोग्योपनिषद से यह सिद्ध होता है कि जल व स्थान का नाम तीर्थ न होकर मनुष्य के मन का काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छा व द्वेष से सर्वथा मुक्त होने को ही तीर्थ कहते हैं। छान्दोग्य उपनिषद के इसी वाक्य पर प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी की टिप्पणी है कि उपनिषद् के इसी सद्विचार को एक मुस्लिम विचारक ने ऐसे कहा है-**’दिल बदस्त आवर के हजे अकबर अस्त’** **अर्थात् हृदय को जीतो यह सबसे बड़ा हज है।** यह कथन इस्लामी जगत में प्रचारित तो बहुत है, परन्तु अहिंसा की भावना कहीं जगी नहीं। यहां यह भी अवगत करा दें कि महर्षि दयानन्द से पूछे गये अन्य दो प्रश्न मूर्तिपूजा व अवतारवाद पर हैं जिनका उन्होंने युक्ति व प्रमाण से युक्त हृदयग्राह्य उत्तर दिया है। विस्तारभय से उसे यहां छोड़ दिया है।

महर्षि दयानन्द के समय में हिन्दू आर्यों में विभिन्न समुदायों व वर्गों द्वारा परस्पर एक साथ बैठकर भोजन के सम्बन्ध में भी भ्रान्तियाँ रही हैं। **अतः मेरठ में ही कुवंर ज्वाला प्रसाद पाठक ने उनसे पूछा कि अन्य जातियों व मतानुयायिों के हाथ का पकाया हुआ अथवा स्पर्श किया हुआ खाने से वैदिक धर्म के मानने वालों की कुछ हानि कर सकता है अथवा नहीं? इसमें कुछ पाप अथवा पुण्य है अथवा नहीं? स्वामी जी ने उत्तर दिया--न तो कुछ बुराई है और न भलाई।**

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**